International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 7 Issue 6, November-December, 2019, Impact Factor: 5.246

राजस्थान में महिला के समान अधिकार की मांग और आर्य समाज के प्रयास

डॉ. पिंकी यादव

सह-आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

प्राचीन वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति प्रायः पुरूषों के समान होती थी। स्त्री को पुरूष की सहधर्मिनी माना जाता था। यह समझा जाता था कि स्त्री के बिना पुरूष का कोई काम यज्ञ व धार्मिक कृत्य पूरा नहीं हो सकता। स्त्रियां भी पुरूषों के समान विधाध्यन करती थी और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन में उनका हाथ बंटाती थी। वास्तव में स्त्री व पुरूष गाड़ी के दो पहिये माने गये है। दोनों पहिये बराबर रहने चाहिए। तभी तो जीवन की गाड़ी अच्छी तरह चल सकती है क्योंकि जिस प्रकार पुरूष के बिना स्त्री का जीवन कार्य अपूर्ण रहता है उसी प्रकार स्त्री के बिना पुरूष का जीवन भी अपूर्ण रहता है। लेकिन 19वीं शताब्दी में देश की तरह राजस्थान में भी सामाजिक व पारिवारिक जीवन में महिलाओं की स्थिति अर्थहीन हो गयी थी। उसका सामाजिक अस्तित्व शून्य था जैसे कि दास का होता था। पुरूष की तुलना में उसे अत्यन्त कमजोर माना जाता था जिसका अस्तित्व समाज में कोई नहीं था। उसको परिवार में ही नहीं समाज में भी पराधीन जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उसे कोई अधिकार नहीं था। इसके अतिरिक्त उस पर दोषारोपण यह किया जाता था कि वह नैतिक दृष्टि से जीवन व्यतीत करने की अभ्यस्त नहीं है।

19वीं में देश की तरह राजस्थान में भी शताब्दी में महिला बहुत ही साधारण जीवन व्यतीत कर रही थी तथा एक स्वतंत्र व्यक्तित्व को पार करने की आकांक्षा भी उनमें कुछ ही बाकी थी। पंडित रमा बाई ने महिलाओं की दशा पर लिखा है कि ‘‘उन्हें पवित्र धर्मग्रन्थों को पढ़ने की अनुमति नहीं थी इसके स्थान पर उन्हें भौतिक जीवन में लिप्त रखने के लिए परिवार के लोग महिलाओं को कुछ आभूषण देकर खुश रखने की चेष्टा करते थे इसके अलावा सही अर्थ में परिवार में और कोई सम्मानवीय अवसर नहीं था। केवल यदा-कदा लोग उसके सम्मुख झुककर अपना सम्मान प्रदर्शित करते थे।’ इस समय तक नारी का जीवन ऐसा था कि वह परिवार की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण

करते हुए पुरूष की खुशी को ध्यान में रखें। परिवार के सभी लोग समान रूप से यह धारणा बनाकर चलते थे कि उनका मानसिक स्तर बहुत निम्न है। इसलिए उनसे किसी भी प्रकार की बौद्धिक गतिविधियों की उपेक्षा करना उचित नहीं है। महिलाओं को शिक्षा बहुत कम दी जाती उनका उपनयन संस्कार भी नहीं होता था। आर्थिक रूप से भी वह पुरूष के ऊपर ही निर्भर थी इस प्रकार उसका कार्यक्षेत्र घर की चारदिवारी तक ही सीमित था।1

अनेक पाश्चात्य विद्वानों की मान्यता है कि स्त्री कुछ जन्मजात दोषों के कारण पुरूष के समान स्तर पर नहीं मानी जा सकती है, उसे पुरूष के समान स्तर पर नहीं रखा जा सकता। डाक्टर रूबेक का कथन है कि "स्त्रियों में जन्म से अस्थिरता का दोष पाया जाता है।' मनोवैज्ञानिक फ्रायड का विचार है कि-"स्त्रियों के मस्तिष्क में ईष्या भरे होने से उनमें न्याय की भावना बहुत कम हाती है' '

स्त्रियों में प्रचलित दोषों का खण्डन करते हुए 19वीं शताब्दी के महान सुधारक दयानन्द सरस्वती ने घोषणा की कि किसी भी समाज की प्रगति व उन्नयन के लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियों को मानवोचित सम्मान व पुरूषों के समान बराबर अधिकार दिये जाये। महर्षि ने यह भी प्रतिपादित किया था कि राज्य के शासन में भी स्त्रियों को पुरूषों के काम में हाथ बटाना चाहिए व देश की रक्षा, न्याय, युद्ध एवं शासन में पुरूषों के समान उन्हें भी कार्य करना चाहिए। इस विषय में महर्षि के कुछ कथन उदाहरण के योग्य है-"जैसी राजनीति विद्या का राजा पढ़ा हो वैसी ही विद्या उसकी रानी भी पढ़ी होनी चाहिए। 'स्त्रियों का स्त्री रानी व पुरूषों का पुरूष राजा न्याय करें। राजपुरूष आदि को चाहिए कि आप जिस-जिस कार्य में प्रवृत्त हो उस कार्य में अपनी स्त्रियों का भी स्थापन करें। स्त्रियों का न्याय आदि पुरूष न करें क्योंकि पुरूषों के सामने स्त्री लज्जित एवं भययुक्त अवस्था से सही तरह बोल एवं पढ़ नहीं सकती।

हे मनुष्यों! जो रानी धनुर्वेद जानती हुई अस्त्र शस्त्र फेकने वाली है उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिए। संग्राम में राजा के अभाव में रानी सेनापति को और जैसे राजा युद्ध कराने की वीरों को प्रेरणा दे वैसे ही वह भी आचरण करें।

जब राज्य के शासन तक में स्त्रियों की स्थिति पुरूषों के समान हो तो समाज के अन्य क्षेत्रों में कैसे हीन समझी जा सकती है, इसलिए महर्षि ने प्रतिपादित किया कि स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ही शिक्षा दी जानी चाहिए। जैसे 8 वर्ष की आयु हो जाने पर बालकों के लिए गुरूकुल में रहकर विद्याभ्यास करना अनिवार्य हो, वैसे की बालिकाओं के लिए भी हो। लड़कियों के लिए पृथक पाठशालाएँ हो जहाँ सब अध्यापिकाएं एवं भृत्य स्त्रियां ही हो, लड़कियों को भी अर्थ सहित गायत्री मंत्र का उपदेश दिया जाए।[2] उनके शब्दों में, "यदि स्त्रियों को वेद नहीं पढ़ाये जाते तो वह मंत्रों का शुद्ध उच्चारण किस प्रकार कर सकेगी और स्त्रियां अशिक्षित है तो घर निरन्तर देवताओं तथा राक्षसों के

युद्ध का स्थान रहेगा और वहां सुख शान्ति नहीं होगी।[3] महर्षि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''सब स्त्री एवं पुरूष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढने का अधिकार है।[4]

सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने लिखा है -

जैसे पुरूषों का व्याकरण, धर्म और व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैधक, गणित एवं शिल्प विधि को अवश्य सीखना चाहिए ''क्योंकि इसके सीखे बिना सत्य-असत्य का निर्णय सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्धन और सुशिक्षा, घर के सब कार्यों को कैसा करना- कराना चाहिए नहीं कर सकती।'

सत्यार्थ प्रकाश में दयानन्द ने लिखा है कि ''एक परिवार की खुशी स्त्री और पुरूष दोनों की खुशी पर निर्भर करती है। उन्होंने अपने विचारों के समर्थन में मनु का उदाहरण दिया। जब कभी पति अपनी पत्नी के साथ संतुष्ट हो जाता है ओर पत्नी अपने पति के साथ वहां सदा अविचल कल्याण बना रहता है। दयानन्द के अनुसार केवल इतना ही नहीं महिलाओं का उनके माता-पिता पतियों के द्वारा सम्मान किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में उनसे मधुर बोलना चाहिए।5संस्कार विधि में दयानन्द ने कहा कि ''ईश्वर के समीप स्त्री पुरूष दोनों बराबर है। जब पुरूषों को पुर्नविवाह की आज्ञा हो तो स्त्रियों को भी पुर्नविवाह से क्यों रोका जाये। विधवा स्त्री का पुर्नविवाह होना चाहिए और पुरूष अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं है परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् अधिकार है कि वह पुर्नविवाह करे, ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिए।

राजस्थान के सामन्तवादी समाजिक ढाचे में स्त्रियों को किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे और स्त्री समाज धीरे-धीरे पिछड़ता गया परन्तु आर्य समाज की स्थापना के वाद राजस्थान में भी स्त्रियों की स्थिति को सुधारने तथा उन्हें पुरूषों के समान अन्य अधिकार दिलवाने की मांग उठने लगी। उदाहरणार्थ स्त्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था, सार्वजनिक समारोह में भाग लेने पर्दा तथा प्रथा को समाप्त करने तथा आजीविका के क्षेत्र में प्रवेश करने की सुविधा मिल गई।

स्त्री पुरूष की समानता की भावना की दिशा में आर्य समाज का एक उल्लेखनीय कार्य पर्दा प्रथा का विरोध करना था। दयानन्द का कहना था कि महिलाओं को पर्दे में रखना अनुचित कार्य है पर्दा करने से कोई चरित्र रक्षा हो ऐसी कोई प्रत्याभूति नहीं है। जीवनयापन का श्रेष्ठ ढंग जिससे चरित्र की रक्षा सर्वोत्तम ढंग से होती है ज्ञानार्जन से मालूम होता है। प्राचीन भारत में पर्दा प्रथा नहीं थी। अंग्रेज महिलाये भी पर्दा नहीं करती थी और वह हिन्दू महिलाओं की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान, अधिक साहसी, अधिक विद्वान और अधिक उदार विचारधारा की होती थी।6उन्होंने ओमेलों ने अपने भाषण में कहा कि ''सामाजिक जीवन के उत्थान में यदि औरतों को अपनी भूमिका अदा करनी है तो उनके लिए यह जानना जरूरी है कि किन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के लिए उनकों प्रशिक्षित होना है, तो पर्दा प्रथा को समाप्त करना चाहिए।'

वैदिक युग से प्रथम ईसा पूर्व तक हिन्दू समाज में स्त्रियों के लिये पर्दा या अवगुंठन नहीं था। स्त्रियां बिना पर्दे के स्वच्छंदतापूर्वक आ जा सकती थी।[7] वैदिक काल में वधु सभी आगंतुकों को दिखाई जाती थी और यह आशा की जाती थी कि वह वृद्धावस्था तक जनसभाओं में बोल पाएगी। उस युग में स्त्रियां सभा और समिति, उत्सव और मेला सभी में सम्मिलित होती थी।

शिक्षा के प्रचार ने पर्दे को पहली चोट पहुँचाई। पढ़ी लिखी लड़कियों को परदा अस्वाभाविक प्रतीत होने लगा। पर्दे को दूसरी ठोकर तब लगी जब आर्य समाज के जलसों में स्त्रियों की उपस्थिति आवश्यक समझी जाने लगी।[8]

राजस्थान में सांभर नामक स्थान पर 4 जून 1938 ई0 को श्री रामप्रसाद की सुपुत्री गोदावरी का विवाह चांदरतन मेहता वकील के साथ हुआ। इस विवाह में केवल दस बाराती आये तथा रूढ़िवादी परम्परा पर्दा प्रथा को तोड़कर वधु ने वर को बिना परदे के पुष्पमाला पहनायी एवं वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न हुआ।[9]

श्री हरीशचन्द्र नैण जो पक्के आर्यसमाजी थे उन्होंने स्त्री समानता पर बल देते हुए देहज प्रथा का विरोध किया व इन्होंने अपने एक पुत्र श्री भगवान का विवाह चैधरी गोरधन सिंह की सुपुत्री ग्राम रातकुडिया जिला-जोधपुर के साथ वैदिक रीति से सम्पन्न करवाया एव दहेज में कुछ भी नहीं लिया।10 श्री हरिशचन्द्र नैण ने अपने भाई हिम्मतराम की लड़की के विवाह में भी दहेज नहीं देने का दृढ संकल्प करके अपने होने वाले सम्बन्धी जोधपुर निवासी ताराचन्द को एक पत्र लिखा कि ‘‘विवाह वैदिक रीति से होगा। बारात नहीं बुलाई जायेबी केवल एक लड़का व इतना न पावे तो पांच सात आदमी बुलाये जा सकेंगे। जिस दिन आप आयेगें उसी दिन विदा कर दिया जायेगा।’ श्री ताराचन्द ने 2 दिसम्बर 1930 को एक पत्र लिखकर सब बातें स्वीकार कर ली।[11]

निःसंदेह हरिशचन्द नैण पर आर्य समाज के सिद्धान्तों व कार्यों का प्रभाव था जिन्होंने इसे अपनाकर इन स्त्री-पुरूष असमानता वाली कुप्रथाओं को मिटाने में राजपुताना आर्य समाज को अपना योगदान प्रदान किया।

आज हम देखते है कि लगभग सभी शिक्षित जातियों में विवाह के अवसर पर वरमाला पहनाई जाती है। अधिकांश लड़कियां खुले मुँह वरमाला पहनाती है। यह आर्य समाज के अथक प्रयासों का अप्रत्यक्ष प्रभाव है जो हमें देखने को मिलता है। पर्दा प्रथा समाप्त होने से स्त्रियों न केवल पुरूष की तरह स्कूलों एवं कालेजों में जाने लगी वरन् राजनैतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों में भी पुरूषों के साथ भाग लेने लगी। यही नहीं दफ्तरों, मिलों, शिक्षण संस्थाओं व अन्य क्षेत्रों में भी स्त्रियां पुरूषों के साथ काम करने लगी।

सन्दर्भ सूची -

1. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास, पृ.सं. 159
2. आर्य मर्तान्ड 25 जुलाई 1928 बांदीकुई में पुर्नविवाह के उपलक्ष में निकला था
3. शारदा चांदकरण, विधवा विवाह करो।
4. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ 30
5. भाई योगेन्द्र जीत, शिक्षा सिद्धान्त पृष्ठ 194
6. दयानन्द सरस्वती,सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ 64
7. दयानन्द सरस्वती,सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ 74
8. दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि पृष्ठ 188
9. लाइफ आफ दयानन्द सरस्वती, हरविलास शारदा पृष्ठ 165
10. प्राचीन भारत को इतिहास, डा. जयशंकर मिश्र पृष्ठ 368
11. आर्य समाज का इतिहास, इन्द्रविधावाचस्पति पृष्ठ 288
12. आर्य मर्ताण्ड: 10 जून 1938 पृष्ठ 12